



स्वामी विवेकानंद की करुणामयी गुरु माँ सारदा देवी

संतोष रजक, पीएच-डी, इतिहास विभाग
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एण्ड साइंस पटना, पाटलिपुत्र, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE



Author

संतोष रजक, पीएच-डी
E-mail : swami.1919@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 09/03/2026
Revised on : 10/05/2026
Accepted on : 19/05/2026
Overall Similarity : 00% on 11/05/2026



Plagiarism Checker X - Report

Originality Assessment

0%

Overall Similarity

Date: May 11, 2026 (05:10 PM)
Matches: 0 / 2587 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found,
your document looks healthy.

Verify Report:
Scan this QR Code



शोध सार

स्वामी विवेकानंद की गुरु माँ और श्री रामकृष्ण परमहंस की लीला सहधर्मिणी श्री सारदा देवी भावी भारत तथा विश्व को एक नव अभ्युद्य के राजमार्ग पर ला दिया। श्री माँ कोई निगूढ़ दर्शन अथवा जटिल मतवाद लेकर अविर्भूत नहीं हुई थी वे तो आई थी जीव मात्र की कल्याण-विधायिनी जननी के रूप में प्राणीमात्र में मातृत्व के आदर्श स्थापित करने के लिए। माँ सारदा का जीवन प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक माँ और प्रत्येक संन्यासिनी के लिए आदर्श हैं। माँ सारदा विश्व व्यापी रामकृष्ण मठ मिशन और संयुक्त आश्रमों के आदर्श दिव्यमयी और प्रेममयी माता हैं। ग्रामीण, अनपढ़, परदे, और घुँघट में रहने वाली माँ सारदा जगतजननी या विश्ववन्द्या के रूप में पूजी जाती है। वे ही भारत के समाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सेवा के आदर्श हैं। उनका प्रेम सज्जन और दुर्जन, संत और पतीत, पापी और पुण्यात्मा, ऊँच-नीच किसी में भेद महसूस नहीं करता। वो सब पर समान रूप से अपना प्रेम वर्षण करती थी, वो तो सबकी करुणामयी माँ हैं।

मुख्य शब्द

दिव्यमयी, प्रेममयी, जयरामवाटी, दक्षिणेश्वर, नौबतखाना, चरणामृत.

श्रीमाँ सारदा का जीवन लौकिक रूप से अत्यन्त संघर्षशील दृष्टिगोचर होने पर भी आभ्यन्तरिक रूप से पूर्णतः ईश्वरपरायण एवं स्वस्वरूपस्थिति का परिचायक है। समस्त गृहस्थी के कार्य करते हुये भी उनका मन सदा संसारातीत रहा करता था, अपने परम प्रेमास्पद श्रीठाकुर में लगा रहता था। श्रीमाँ सारदा के सम्बन्ध में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं "श्रीमाँ ने अथक परिश्रम करके अपनी भतीजी राधू के विवाह के समस्त मांगलिक कार्यों को सुसम्पन्न कराया, किन्तु आपात् दृष्टि से पारिवारिक झंझटों में इस प्रकार लगी रहने पर भी उनका मन सदैव किस प्रकार से संसार से परे विराजमान रहता था"।

श्रीमाँ कर्मयोगिनी थीं। विविध कर्म करते हुये भी वे कर्म से अलिप्त थीं। उनके पास बहुत-से पुरुष-महिला भक्त सहयोगी

थे, किन्तु वे स्वयं बहुत-से कार्य करती थीं। श्रीमाँ अपने हाथों काम करना पसन्द करती थीं और दूसरों को वैसा करने को कहा करती थीं। एक अपराह्न में ब्रह्मचारी गोपेश ने देखा कि माँ जयरामवाटी के नये मकान में नलिनी दीदी के कमरे में बैठकर धीरे-धीरे आटा गूँथ रही है। उस समय वहाँ नौकर-नौकरानी, सेवक-सेविका आदि की कमी नहीं थी, फिर भी उस बुढ़ापे और अस्वस्थ अवस्था में माँ को इतना परिश्रम करने की क्या आवश्यकता थी? ब्रह्मचारी ने मन की बात खोलकर माँ से कही, तो उन्होंने उत्तर दिया, “बेटा, काम करना ही अच्छा है।” फिर कुछ देर चुप रहकर गम्भीरता से कहा, “आशीर्वाद दो कि जितने दिन रहूँ, काम करती ही जाऊँ”।²

श्रीमाँ के कामारपुकुर के कर्ममय जीवन के सम्बन्ध में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं कि आश्विन मास में नवरात्रि के समय नवमी के दिन श्रीरामकृष्ण के यहाँ शीतला माता की षोडशोपचार पूजा होती, भोग लगता और ब्राह्मण-भोजन होता। श्रीमाँ पहले से ही अपने हाथों चावल बनातीं और अन्यान्य सामग्रियाँ संग्रह कर रखती थीं। वे रसोई भी पकातीं। परोसते समय वे शीबू दादा से कहती, “शीबू, तू पत्तल बिछाकर जल और नमक दे, मैं सबको भात परोसती हूँ। सागर की माँ कहती है, उनका मानो लक्ष्मी का भंडार था। किसी चीज की कमी नहीं होती थी, जो बचता उसे सावधानी से रख देती थीं। दूसरे दिन हमलोगों को बुलाकर बड़े प्रेम से खिलाती थीं। “माँ उत्सवों के सिवा दैनिक अतिथि-सेवा भी करती थी। किसी भी अभ्यागत को वे अपने दरवाजे से नहीं लौटाती थी”।³

श्रीमाँ जब दक्षिणेश्वर में नौबतखाने में रहती थीं, तब उनकी दिनचर्या यह थी की वह चार बजे प्रातःकाल अपनी दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर ध्यान में बैठती, क्योंकि ध्यान करने की ठाकुर की आज्ञा थी। इसके पश्चात् अन्य कार्यों को पूरा कर वे पूजा के लिए बैठतीं। पूजा, ध्यान और जप में लगभग डेढ़ घंटा समय लगता था। इसके पश्चात् सीढ़ी के नीचे रसोई पकाने के लिए बैठतीं। रसोई हो जाने पर जिस दिन अवसर मिलता, उस दिन अपने हाथों से ठाकुर को स्नान के लिए तेल मालिश कर देती। साढ़े दस, ग्यारह बजे के भीतर ठाकुर भोजन करते थे। जब वे स्नान करने जाते, तब श्रीमाँ जल्दी उनके लिए पान ठीक करती और ध्यान रखतीं कि वे स्नान करके लौटे या नहीं। उनके अपने कमरे में लौटते ही माँ वहाँ पीने का जल रख देती, उसके उपरान्त थाली परोसकर सामने लाकर रख देतीं। जब ठाकुर भोजन करने लगते, तब श्रीमाँ उनसे अनेक प्रकार की बातें करतीं, जिससे भोजन करते समय भावसमाधि उपस्थित हो उनके भोजन में बाधा न डाले। अकेले श्रीमाँ ही भोजन करते समय ठाकुर की भावसमाधि को रोक सकती थीं, दूसरे किसी से यह सम्भव नहीं था। ठाकुर के भोजन करने के पश्चात् श्रीमाँ अपने मुँह में थोड़ा कुछ डालकर पानी पी लेती। फिर पान लगाने बैठतीं। पान लग जाने पर गुनगुनाकर गातीं, बड़ी सावधानी से, ताकि कोई सुन न ले। इसके बाद जब मिल का एक बजे का भोंपू बजता, तब श्रीमाँ खाने को बैठतीं इस प्रकार डेढ़ या दो बजे के पूर्व कभी उनका भोजन नहीं होता था। भोजनोपरान्त नाममात्र के लिए विश्राम करती और तीन बजे के लगभग सीढ़ी की धूप में अपने केश सुखाती। फिर रखे हुए पानी से जरा हाथ-मुँह धो लेती। “सन्ध्या होने पर दिया-बत्ती जला और देवताओं को धूप-बत्ती दे वे ध्यान में बैठ जातीं। इसके पश्चात् रात का भोजन बनातीं। सबको खिला-पिलाकर तब स्वयं भोजन करती, उसके बाद सोने के लिए जाती”।⁴

जब श्रीमाँ जयरामवाटी में रहती थीं, तब उनकी तत्कालीन दिनचर्या भी बड़ी व्यस्त थी। श्रीमाँ के काम-काज का अन्त न था। जयरामवाटी में भक्तों को देख-भाल करना, सबेरे दो घंटे तक तरकारी काटना, भंडार घर से सामान निकाल देना, पूजा का आयोजन करना, स्वयं पूजा करना, पूजा के बाद प्रसाद बाँटना, कम-से-कम सौ बीड़े पान लगाना, शाम को अपने हाथों आटा गूँथकर रोटी, पूरी आदि बनाना, दूध औटना, लालटेन साफ करना, आदि काम वे स्वयं प्रेम के साथ लगातार करती थी। “घर में अन्य लोगों के रहने पर भी लगता था, जैसे सभी काम श्रीमाँ के ही हों”।⁵

अब तक हमने श्रीमाँ के विभिन्न स्थानों की व्यस्त दिनचर्या का अवलोकन किया है। अब हम देखेंगे कि किस प्रकार इतनी व्यस्तता में भी वे आनन्दित और प्रफुल्लित रहते हुये प्रतिदिन एक लाख जप करती थीं। श्रीमाँ सारदा देवी के चरित्रकार लिखते हैं “प्रतिदिन रात को श्रीमाँ तीन बजे उठकर नौबतखाने के पश्चिम के बरामदे में दक्षिण ओर मुख करके ध्यान करती थीं। इसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होता था। उनकी जप की संख्या भी बहुत अधिक थी। एक दिन उन्होंने अपनी भतीजी नलिनी से बातचीत में कहा, ‘मैं तेरी अवस्था में कितने काम करती थी।... वह सब करती हुई भी नित्य एक लाख जप करती थी।’ .. इस जप-ध्यान के साथ उनके मन में निरन्तर प्रार्थना चलती रहती। रात्रि में जब चन्द्रमा उठता, तब गंगा के स्थिर जल में उसका प्रतिबिम्ब देखकर वे सजल नयन भगवान से प्रार्थना करती, “चन्द्रमा में भी कलंक है, मेरे मन में कोई दाग न रहे”।⁶

श्रीमाँ कहती थी कि परिश्रम करना चाहिये, क्या बिना परिश्रम के कुछ होता है? सांसारिक कार्यों के बीच भी कुछ समय निकालना चाहिये। “अरी ! मैं अपनी बात क्या बताऊँ ? मैं उस समय दक्षिणेश्वर में रात के तीन बजे उठकर जप करने बैठती

थी”¹⁷ हम देखते हैं कि इस व्यस्त दिनचर्या में भी श्रीमाँ भगवन्नाम जप और प्रार्थना करती रहती थीं। श्रीमाँ की यह दिनचर्या आज के व्यस्त जीवन में भी सदा ईश्वर-नाम जप और प्रार्थना करने की प्रेरणा देती है। कोई भी व्यक्ति आधुनिक कर्मप्रवण व्यस्त जीवन में भी इसका अनुपालन कर अपने जीवन में भगवत् सान्निध्य का अनुभव कर शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकता है।

करुणामूर्ति माँ सारदा की अपनी संतानों के प्रति करुणा भी बोधगया में बौद्ध विहार मठ को देखकर अभिव्यक्त हुई। जब वे 1890 में तीर्थाटन के दौरान बोधगया गई थी और वहाँ उन्होंने बौद्ध विहारों के ऐश्वर्य को देखा और अपनी त्यागी संतानों के अन्न-वस्त्र के कष्ट को देखा, तो उनका मातृ-मन द्रवित हो गया। सन 1890 ई. के मार्च में श्रीमाँ बोधगया गयी थीं। उस दिन एक ओर वहाँ के मठ का अतुल ऐश्वर्य देख और दूसरी ओर अपने त्यागी पुत्रों के लिये स्थायी आश्रय का अभाव, अन्न-वस्त्र का अवर्णनीय कष्ट तथा साथ ही मठ के संचालन में अत्यन्त दैहिक कष्ट आदि देख संघ-जननी विचलित हो उठीं। संघ को सुव्यवस्थित रूप से देखने के लिये उनके मन में एक करुण प्रार्थना जाग उठी। बाद में उन्होंने कहा था “अहा ! इसके लिये ठाकुर के सामने कितना रोई हूँ। कितनी प्रार्थना की हूँ। तभी तो आज उनकी कृपा से ये मठ-वठ जो कुछ है। ठाकुर के देह-त्याग के बाद लड़के संसार त्यागकर कुछ दिन एक स्थान पर निवास किये। इसके बाद सभी स्वाधीन रूप से एक-एक कर इधर-उधर घूमते रहे। उस समय मुझे बड़ा दुख हुआ। ठाकुर के पास प्रार्थना करने लगी ‘ठाकुर, तुम आए, इन कुछ व्यक्तियों के साथ लीला की और आनन्द करके चले गए और बस, सब समाप्त हो गया? तो इतना कष्ट करके आने की क्या आवश्यकता थी? मैंने काशी-वृन्दावन में देखा है, अनेक साधु भीख माँगते और इधर-उधर भटकते-फिरते हैं। ऐसे साधुओं की तो कमी नहीं है। तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े से अन्न के लिए भटकते रहेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जाएगा। “मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने-पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे और सांसारिक दुखों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे इसीलिए तो तुम्हारा यहाँ आना हुआ है। उन्हें इधर-उधर भटकते देख मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है। इसके बाद नरेन ने धीरे-धीरे यह सब किया”¹⁸

करुणामयी माँ सारदा देवी के करुणोद्रेक से रामकृष्ण संघ की स्थापना हुई। रामकृष्ण संघ सम्पूर्ण विश्व के लिये है, सम्पूर्ण मानवता के लिये है। श्रीमाँ की इस स्नेह-सुरसरि की धारा में सम्पूर्ण विश्ववासियों का मंगल-विधान अन्तर्निहित था। करुणामयी माँ के पास सन्तप्त कितने नर-नारी बच्चे बच्चियाँ आते थे और माँ उन्हें बड़े स्नेह और वात्सल्य से धैर्य प्रदान करती थीं, सान्त्वना प्रदान कर उन्हें हर्षित कर देती थी, माँ की अभय स्नेहमयी वाणी से उनके दुखों का नाश हो जाता था और वे लोग प्रसन्नमुखमंडल से अपने घर चले जाते थे। शंकराचार्यजी ने देव्यापराधस्तोत्र में कहा है – कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति-पुत्र कुपुत्र हो जाता है, लेकिन माता कभी कुमाता नहीं होती। पुत्र से त्रुटियाँ हो सकती हैं, लेकिन माता अपने स्नेह से कभी भी पुत्र को वंचित नहीं करती, उसका सदा मंगल ही चाहती है। श्रीमाँ के जीवन के ऐसे कई उदाहरण हैं, जिसे सबके त्यागने पर उन्होंने करुणावश स्वयं उसकी पुत्रवत् स्नेह देकर रक्षा की है।

एक बार स्वामी ब्रजेश्वरानन्द जी तपस्या करने जाने के लिये माँ की अनुमति लेने कलकत्ता गये। माँ को प्रणाम कर उन्होंने अपना मनोभाव बताया। माँ ने पूछा, कहाँ जाओगे और पास में रुपया-पैसा है या नहीं? उन्होंने कहा कि हाथ खाली है, वे ग्रांड ट्रंक रोड पकड़कर पैदल काशी जायेंगे। माँ ने कहा, “कार्तिक का महीना है। लोग कहते हैं कि इस समय यम के दरवाजे चारों ओर खुले रहते हैं। मैं माँ हूँ, कैसे कहूँ, बेटा कि तुम जाओ? फिर कहते हो कि तुम्हारा हाथ खाली है। भूख लगने पर भला कौन खाने को देगा, बेटा?”¹⁹ इसके बाद वे नहीं गये। इसमें मातृसुलभ करुणा का उद्रेक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

एक बार कुछ साधु संघ छोड़कर जा रहे थे। जयरामवाटी में माँ से मिलने पर माँ ने जाने से मना भी किया लेकिन उग्र तपस्या करने की इच्छा बताकर वे काशी चले गये। स्वामी शिवानन्द जी ने काशी अद्वैत आश्रम में पत्र लिखकर इन लोगों को रहने से मना कर दिया। उनमें से एक भोलानाथ ने घबराकर श्रीमाँ की शरण ली और अद्वैत आश्रम में रहने की अनुमति माँगी। यद्यपि यह अपराध था, लेकिन श्रीमाँ ने करुणावश क्षमा करते हुये भोलानाथ को लिखा- “मैंने तुम्हारी बात चन्द्र को लिख दी है और तुम्हें भी लिख रही हूँ कि जब काशी पहुँच गये हो, तब ठाकुर के आश्रम में रहकर आजीवन चन्द्र की तथा साधुओं की सेवा यदि कर सको, तो सब प्रकार से कल्याण होगा”²⁰ श्रीमाँ के निर्देशानुसार भोलानाथ ने आजीवन वहीं सेवा की। अपराधी पुत्रों के प्रति भी उनके कल्याण की सतत चिन्ता थी माँ को मूल में अनन्त करुणामयी का करुणामय स्वभाव ही था। ऐसे ही जब ब्रह्मचारी नगेन ने कुछ मूल के कारण स्वामी शिवानन्द जी को बिना बताये जयरामवाटी जाकर माँ की शरण ली, तब श्रीमाँ ने शरणागत सन्तान की सब प्रकार से रक्षा की और उसे पुनः शिवानन्दजी को पत्र लिखकर मठ में रखवाया।

श्रीमाँ ने कितने दीर्घ व्याधि पीड़ित लोगों की व्याधि को दूर कर उन्हें कष्ट मुक्त किया। इसमें एक घटना उल्लेखनीय

है। क्षीरोदबाला राय हाथ के घाव से 12 वर्षों से पीड़ित थीं। किसी प्रकार भी वह घाव ठीक नहीं हो रहा था “हठात् एक दिन माँ को जानकारी हुई। उन्होंने ठाकुर का चरणामृत लगाने को कहा। चरणामृत लगाने के बाद वह घाव सदा के लिये ठीक हो गया”।¹¹ एक बार एक छोटे बच्चे को श्रीमाँ ने उसके आग्रह पर दीक्षा भी दी थी। माँ ने कहा था, कहो तो, कौन भगवान के लिये रोता है, वह उस दिन कितना रो रहा था !

एक दिन माँ के सेवक ने देखा कि वह रात में सोती कम हैं, जब बुलाओ, तो एक ही पुकार में उत्तर दे देती हैं। तब एक दिन उसने पूछा माँ आप सोयी नहीं हैं या नींद ही नहीं आती है? माँ ने उत्तर दिया “क्या करूँ बेटा, लड़के सब व्याकुल होकर मुझे पकड़ लेते हैं, आग्रह कर उस समय दीक्षा तो ले जाते हैं, पर कहाँ, कोई नियम से, नियम से ही क्यों, कोई तो कुछ भी नहीं करते। तो भी जब उनका भार ले लिया है, तब मुझे उन्हें देखना ही पड़ेगा इसलिये जप करती रहती हूँ और ठाकुर से उनके लिये प्रार्थना करती हूँ— “हे ठाकुर ! उन्हें चेतना दो, मुक्ति दो, उनके इहकाल और परकाल के बारे में तुम्हीं देखते रहो। इस संसार में बड़ा दुख है। फिर उन्हें न आना पड़े”।¹² यहाँ जगत जननी जीव-दुख से कातर हो अपनी निष्कारण करुणा कटाक्ष से जीवों के कल्याणार्थ वृद्ध शरीर में भी रात में जप और प्रार्थना करती हैं।

करुणामयी की करुणा भी अनन्त रूपों में अभिव्यक्त हुई थी, तभी तो स्वामी चण्डिकानन्द जी महाराज ने लिखा था, ‘जय जय जननी जय श्रीसारदामणि करुणारूपिणी जय माँ।’

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद की गुरु माँ और रामकृष्ण परमहंस की सह धर्मिणी श्री माँ सारदा देवी ने सभी प्राणियों के प्रति अपने मातृप्रेम, सहज-सरल जीवन तथा आध्यात्मिक शक्तियों के द्वारा नवीन युगधर्म की स्थापना की। वैसे तो उनका जीवन ही जगत के लिए उनका सन्देश है। श्री माँ करुणामयी और ज्ञानदायिनी थीं। उनकी सरल-सहज भाव से कही गई बातों से लोगों को शान्ति, सन्तुष्टि और ज्ञान प्राप्त होता था। स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि “हे भारत मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती हैं”। पवित्रता तथा सरलता की प्रतिमूर्ति श्री माँ सारदा देवी इन्हीं महीयसी नारियों की तरह हैं। नवयुग में अवतरित इस महाशक्ति रूपिणी श्री सारदा देवी के समान अन्य किसी भी महान नारी को अपने जीवन में इतने उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ा हो- संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण हमें ढूँढने पर भी नहीं मिलता। इतना ही नहीं, पूज्य स्वामी विवेकानन्द तो उन्हें भविष्य की नारी जाति का आदर्श बताते हुए कह भी गये हैं “उन्हें अवलम्बन बनाकर पुनः सब गार्गी-मैत्रेयी संसार में पैदा होंगी।”

संदर्भ सूची

1. गंभीरानंद, स्वामी (1959) श्री माँ सारदा देवी, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 201।
2. वही, पृ. 362।
3. निखिलात्मानंद, स्वामी (2018) माँ की बातें, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 130।
4. वही, पृ. 67।
5. ब्र. अक्षय, चौतन्य (2016) माँ करुणामयी श्री सारदा देवी, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 70।
6. गंभीरानंद, स्वामी (2014) मैं सबकी माँ हूँ, अद्वैत आश्रम, कोलकता, पृ. 61।
7. पूर्वोक्त, श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. 94।
8. पूर्वोक्त, श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. 258।
9. पूर्वोक्त, श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. 264।
10. पूर्वोक्त, श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. 277।
11. पूर्वोक्त, माँ की बातें, पृ. 433।
12. धरणीधरानंद, स्वामी (2016) माँ के पत्र, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 74।
